

## प्राक्कथन

भूतल पर विद्यमान समस्त वैदिक शास्त्रों में श्रीमद्भागवतपुराण का स्थान सर्वोच्च है। यह वैष्णवों का सर्वाधिक प्रिय शास्त्र है। कलिकाल में अज्ञानान्धकार को दूर करने में श्रीमद्भागवत दिव्यज्ञान रूपी सूर्य के समान है।

कृष्णो स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ।  
कलौ नष्टदृषामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥  
(श्री भा. 1-3-43)

“भगवान् श्रीकृष्ण के धर्म, ज्ञानादि सहित अपने परम धाम चले जाने के पश्चात् कलियुग में अज्ञानान्धकार से अंधे लोगों के लिए यह श्रीमद्भागवतपुराण रूपी सूर्य इस समय उदित हुआ है”।

प्रस्थानत्रयी नाम से विख्यात श्रीमद्भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्र और उपनिषद् या वेदान्त एकत्रित रूप से श्रीमद्भागवत में ही विद्यमान है। श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष शब्दमयी मूर्ति है और भगवान् श्रीकृष्ण के समान ही पूजनीय है। यह बारह स्कन्धों, तीन सौ पैंतीस अध्यायों और अठारह हजार श्लोकों से युक्त एक दिव्य साहित्य है; जो आद्योपान्त सर्वत्र ही परमेश्वर श्रीकृष्ण और उनकी भक्ति की महिमा से ओतप्रोत है। प्रस्तुत संकलन का नाम श्रीभागवत माला है। यह श्रीमद्भागवत का सारस्वरूप है। श्रीमद्भागवत के अठारह हजार श्लोक रूपी मोतियों में से एक सौ आठ अतिसुन्दर श्लोक रूपी मोतियों का चयन करके वैष्णवों के लिए एक दिव्यमाला का निर्माण किया गया है, जिसे नित्यप्रति जपने अर्थात् पाठ करने से परमभगवान् श्रीकृष्ण में दृढ निष्ठा जागृत होना निश्चित है।

संकलनकर्तृ :-

“जीवानुगा शैलवासिनी देवी दासी”



---

प्रकाशक – **GBPS** (गीता-भागवत प्रचार सेवा) ट्रस्ट,  
वृन्दावन

---

---

(सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित)

---



1) जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्  
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।  
तेजो वारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा  
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ।।  
(1-1-1)



महर्षि श्री वेद व्यास कृत मंगलाचरण —

‘जिन परमसत्य परमेश्वर से इस विश्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार कार्य अन्वय और व्यतिरेक रूप में सम्पन्न होते हैं, जो सृष्टि विषयक कार्यों से पूर्णतः अवगत रहते हैं, जो स्वतन्त्र—अन्यनिरपेक्ष व स्वयंसिद्ध हैं, जिन्होंने आदि कवि श्री ब्रह्मा के हृदय में संकल्पमात्र से वेद ज्ञान को संचारित किया, जिन परमेश्वर को जानने में ब्रह्मा-इन्द्रादि देवगण भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं; जिस प्रकार अग्नि में जल, जल में स्थल और स्थल में जल का सत्य की भाँति भ्रम होता है, उसी प्रकार जिन परमेश्वर में सत—रज—तम गुणों की विद्यमानता भी केवल भ्रम है, जो परमेश्वर सदैव अपने परमधाम (श्रीगोलोक) में नित्य विराजित हैं, जिन्होंने अपनी स्वरूप शक्ति के प्रभाव से माया शक्ति के प्रभाव को दूर कर रखा है, उन्हीं परमसत्य परमेश्वर का हम ध्यान करते हैं ।’

2) धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां  
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।  
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः





सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥

(1-1-2)



महर्षि श्री वेद व्यास कृत मंगलाचरण—

'इस श्रीमद्भागवत शास्त्र में मात्सर्यरहित भगवद्भक्तों के आचरण करने योग्य परमधर्म—शुद्ध भक्ति का निरूपण किया गया है, जो कि धर्म—अर्थ—काम—मोक्ष तक की भी अभिलाषा से रहित है। इस श्रीमद्भागवत शास्त्र में परम मङ्गलकारी अद्वय ज्ञान तत्त्व रूप वास्तव वस्तु (परंब्रह्म परमेश्वर) का ही प्रतिपादन हुआ है; जो कि सर्ववेद्य (सर्वज्ञेय) है। इस श्रीमद्भागवत शास्त्र के अनुशीलन से आधिदैविक, आधिभौतिक व आध्यात्मिक — इन मायाजनित त्रय तापों का समूल नाश हो जाता है। इस श्रीमद्भागवत को सर्वप्रथम महामुनि श्री नारायण (महामुनि होने से जो सर्वमुनि उपास्य हैं) के द्वारा चतुः श्लोकी श्रीमद्भागवत के रूप में श्री ब्रह्मा जी के समक्ष प्रकाशित किया था।

किसी अन्य पुराण को स्वयं श्री नारायण ने प्रकाशित नहीं किया, इसलिए जिसने श्रीमद्भागवत का अनुशीलन कर लिया है, उसे किसी अन्य शास्त्र की क्या आवश्यकता है? जिस क्षण से गुरुकृपा द्वारा भक्ति को प्राप्त कर कृतार्थ हो चुके श्रोता श्रीमद्भागवत का श्रवणादि अनुशीलन प्रारम्भ करते हैं, उसी क्षण ऐसे भक्ति प्राप्त श्रोताओं के हृदय में परमेश्वर श्री कृष्ण शीघ्रतापूर्वक निश्चल भाव से विराजमान हो जाते हैं।'

3) निगमकल्पतरोर्गलितं फलं

शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।







पिबत भागवतं रसमालयं  
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥



(1-1-3)

महर्षि श्री वेद व्यास कृत मंगलाचरण—

‘हे भगवत्प्रीतियुक्त रसिक जनो! हे अप्राकृत रस की भावना में चतुर भावुक जनो! यह श्रीमद्भागवत वेद रूपी कल्पवृक्ष का परमानन्द रस स्वरूप परिपक्व फल है। यह छिलका गुठली आदि त्यागने योग्य अंश से रहित एवं शुद्ध चिन्मय रस स्वरूप तरल होने के कारण कर्णपुटों में भरकर पीने योग्य है। श्री शुकमुनि के मुख से निस्सृत इस अप्राकृत रसस्वरूप फल का मुक्तिपर्यन्त एवं मुक्ति के उपरान्त भी बारम्बार आस्वादन कीजिये।’

4) स वै पुंसा परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।  
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

(1-2-6)

श्री सूत जी ने शौनकादि मुनियों के प्रति कहा—

‘जिस धर्म का अनुष्ठान करने से अधोक्षज भगवान् में भक्ति जागृत हो, वही सभी मनुष्यों के लिए परमधर्म है। समस्त प्रकार की कामनाओं से रहित व नित्य—निरन्तर स्थिर रहने वाली भक्ति से परमात्मा अति प्रसन्न होते हैं।’

5) धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।  
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

(1-2-8)





श्री सूत जी ने शौनकादि मुनियों के प्रति कहा—

‘किसी भी धर्म का कितना भी अच्छे ढंग से अनुष्ठान कर लिया जाये, किन्तु धर्मानुष्ठान के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की कथा श्रवण में यदि श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती तो वह धर्मानुष्ठान केवल श्रम मात्र है।’



**6) वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।  
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दते ॥**

**(1-2-11)**

श्री सूत जी ने शौनकादि मुनियों के प्रति कहा—

‘उन परमेश्वर को तत्त्ववेत्ता जन अद्वय ज्ञान तत्त्व कहते हैं और वही अद्वय ज्ञान तत्त्व उपासकों की योग्यता के तारतम्य से ब्रह्म, परमात्मा व भगवान् के रूप में अनुभूत होता है।’

**7) एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।  
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥**

**(1-3-28)**

श्री सूत जी ने शौनकादि मुनियों के प्रति कहा—

‘जिन अवतारों का वर्णन यहाँ किया गया है, ये समस्त पुरुष श्री विष्णु के अंश और कला हैं, किन्तु श्री कृष्ण स्वयं भगवान् हैं। युग-युगान्तरों में जब-जब इन्द्र के शत्रुओं-असुरों के द्वारा विभिन्न लोकवासी व्याकुल हो उठते हैं, तब-तब लोकवासियों की रक्षा के लिये ये समस्त अवतार प्रकट होते हैं।’





8) त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे—  
भजन्नपक्रोऽथ पतेत्ततो यदि ।

यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं  
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ।।

(1-5-17)

देवर्षि श्री नारद ने महर्षि श्री वेद व्यास के प्रति कहा—

‘जो मनुष्य अपने वर्णाश्रम धर्म का परित्याग करके भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों का भजन करता है, किन्तु भजन परिपक्व होने से पूर्व ही यदि उसका देहपात् हो जाए या फिर उसका भजन क्रिया से ही पतन हो जाए; फिर भी उसका अमङ्गल नहीं हो सकता और जो मनुष्य भगवान् का भजन न करके केवल अपने वर्णाश्रम धर्म का भलीभाँति पालन करता है; उसे कोई पारमार्थिक लाभ न मिलने से, उसका अमङ्गल ही होता है ।’

9) तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो  
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।  
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं  
कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ।।

(1-5-18)

देवर्षि श्री नारद ने महर्षि श्री वेद व्यास के प्रति कहा—

‘बुद्धिमान मनुष्य को उसी वस्तु की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये जो समस्त उच्च व निम्न योनियों में भ्रमण करने पर भी किसी कर्म के फलस्वरूप प्राप्त नहीं होती ।





संसार के विषय सुख तो समय आने पर प्रारब्धवश सभी को उसी तरह सर्वत्र प्राप्त होते हैं, जिस तरह सभी को बिना प्रयत्न किये ही सर्वत्र दुःख प्राप्त होते हैं।’



**10) यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपुरुषे।  
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा।।**

**(1-7-7)**

श्री सूत जी ने शौनकादि मुनियों के प्रति कहा —  
‘इस श्रीमद्भागवत शास्त्र को शुद्धभक्ति—निष्ठ भगवद्भक्तों के मुख से श्रवण करने से परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति उदित हो जाती है, जो शोक—मोह—भय का नाश करने वाली है।’

**11) आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।  
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः।।**

**(1-7-10)**

श्री सूत जी ने शौनकादि मुनियों के प्रति कहा —  
‘जिन ब्रह्मज्ञानी मुनियों की अज्ञान की ग्रन्थि कट चुकी है और जो सदा आत्मा में ही रमण करते हैं, वे भी भगवान् श्रीकृष्ण की अहैतुकी भक्ति किया करते हैं; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के गुण है ही इतने मधुर कि वे ऐसे मुनियों को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।’



**12) त्वयि मेऽनन्याविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत्।**





रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ।।



(1-8-42)

श्रीमती कुन्ती देवी कृत स्तुति –  
हे श्रीकृष्ण! जिस तरह गंगा जी की अविच्छिन्न जलधारा  
प्रवाहित होकर निरन्तर समुद्र में गिरती रहती है, उसी तरह  
मेरे मन-बुद्धि भी किसी दूसरी ओर न जाकर केवल आपसे  
ही निरन्तर प्रीति करते रहें।

13) एष वै भगवान्साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ।  
मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ।।

(1-9-18)

श्री भीष्म ने पाण्डवों के प्रति कहा –  
‘ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् और परमपुरुष आदि नारायण हैं।  
ये अपनी माया से संसार को मोहित करते हुए वृष्णिकुल में  
छिपकर लीला कर रहे हैं।’

14) तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।  
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशेषः ।।

(1-18-13)

श्री शौनकादि मुनियों ने कहा –  
‘भगवान् के शुद्ध भक्त की निमेष मात्र संगति की तुलना जब  
स्वर्गप्राप्ति और सायुज्य मुक्ति से भी नहीं की जा सकती, तो  
फिर मरणशील मनुष्यों के तुच्छ राज्यभोगादि सुखों के साथ  
तो भला कैसे की जा सकती हैं?’





15) एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ।  
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥



(2-1-11)

श्री शुकदेव मुनि ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—

‘हे राजन्! समस्त लौकिक कामनाओं से युक्त कर्मीजन, दुःखों की अनुभूति के कारण संसार विरक्त होकर निर्भय मोक्ष पद के इच्छुक ज्ञानीजन और योगमार्ग के साधक योगीजन—इन सभी के लिये शास्त्रों का यही निर्णय है कि ये शुद्ध भक्तों के मार्गदर्शन में श्रीहरि के पवित्र नामों का कीर्तन करें अर्थात् कर्मीजनों, ज्ञानीजनों, व योगीजनों के लिये भी श्रीहरिनाम कीर्तन ही परमसाधन है ।’

16) अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।  
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

(2-3-10)

श्री शुकदेव मुनि ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—

‘उदार बुद्धि पुरुष चाहे कामनाओं से रहित हो या समस्त कामनाओं से युक्त हो अथवा मोक्षकामी हो, उसे तो तीव्र भक्तियोग से केवल परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण की ही अराधना करनी चाहिये ।’

17) श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापति  
र्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।  
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णि सात्वतां





प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः ।

(2-4-20)



श्री शुकदेव मुनि कृत स्तुति —

‘जो धन की अधिष्ठात्री देवी श्री लक्ष्मी जी के पति हैं, समस्त यज्ञों के भोक्ता व फलदाता हैं, समस्त प्रजा के रक्षक हैं, सभी की बुद्धि के नियन्ता हैं, समस्त लोकों के पालक हैं, भूदेवी के स्वामी हैं और जो अन्धक, वृष्णि व सात्वत आदि यदुवंशियों के रक्षक और आश्रय हैं, वे भक्तों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों ।

18) प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः

सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः ।

न यत्र माया किमुतापरे हरे—

रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ।

(2-9-10)

श्री शुकदेव ने श्री परीक्षित के प्रति कहा —

श्री ब्रह्मा की एक हजार दैवीय वर्षों की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् श्री नारायण ने अपने वैकुण्ठ धाम का दर्शन कराया, तब श्री ब्रह्मा ने देखा—‘उस परमधाम में न तो रजोगुण और तमोगुण हैं और न ही इन दोनों गुणों से मिश्रित प्राकृत सतोगुण वहाँ पर विद्यमान है। न तो वहाँ पर काल का पराक्रम या विनाशशीलता ही है और न ही बहिरंगा शक्ति माया है। जब वहाँ माया ही नहीं है तो फिर माया के उत्पाद काम—क्रोधादि तो हो ही कैसे सकते हैं? वहाँ पर भगवान् के पार्षद निवास करते हैं, जिनका अर्चन देवता और दैत्य दोनों





ही किया करते हैं।’



19) अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम् ।  
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥

(2-9-33)

श्री भगवान् ने श्री ब्रह्मा के प्रति कहा—

‘सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व एकमात्र मैं ही था और मेरे अतिरिक्त न तो कार्य रूपा स्थूल प्रकृति ही थी और न ही कारण रूपा सूक्ष्म प्रकृति थी। कार्य—कारण रूप इन दोनों प्रकृति से परे जो निराकार ब्रह्म है, वह भी मुझसे पृथक् रूप में नहीं था। सृष्टि के पश्चात् यह सब जो कुछ विद्यमान है, वह मैं हूँ और प्रलय में जो कुछ शेष बचा रहेगा वह भी मैं ही हूँ।’

20) ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।  
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥

(2-9-34)

श्री भगवान् ने श्री ब्रह्मा के प्रति कहा—

‘मुझ परमार्थ भूत के बिना जिसकी प्रतीति होती है और मेरी प्रतीति होने पर जिसकी प्रतीति नहीं होती, उसे मेरी माया जानो। वह माया प्रतिबिम्ब और अन्धकार की भाँति दो रूपों में अभिव्यक्त होती है।’

21) यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्णु ।  
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥

(2-9-35)







श्री भगवान् ने श्री ब्रह्मा के प्रति कहा—

‘जिस प्रकार पृथ्वी—जल आदि पञ्चमहाभूत उच्चतर व निम्नतर समस्त प्राणियों की देहों में प्रविष्ट होकर भी समस्त प्राणियों की देहों से बाहर भी लोकादि में स्थित हैं। उसी प्रकार मैं भी समस्त देहधारी प्राणियों के अन्तःकरण में गुप्त रूप से और प्रेम प्राप्त भक्तों के अन्तःकरण में साक्षात् रूप से प्रविष्ट रहते हुए भी बाहर प्रप चातीत गोलोक व विभिन्न वैकुण्ठ लोकों में विराजमान रहता हूँ।

**22) एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ।**

**अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ।।**

**(2-9-36)**

श्री भगवान् ने श्री ब्रह्मा के प्रति कहा—

‘जो परमात्मा (अथवा भक्ति) सर्वत्र व सर्वदा उपस्थित है, परमसत्य के जिज्ञासुओं द्वारा उसके विषय में अन्वय व व्यतिरेक (विधि व निषेध) क्रम से जिज्ञासा करनी चाहिये।’ (पूर्वोक्त श्लोक क्रमांक 19 से 22 तक चतुः श्लोकी भागवत के नाम से विख्यात हैं।)

**23) यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोग—**

**मायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।**

**विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धः**

**परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ।।**

**(3-2-12)**



श्री उद्धव ने श्री विदुर के प्रति कहा—





‘भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी मानवीय लीलाओं के लिये उपयुक्त जिस दिव्य श्री विग्रह को अपनी योगमाया के बल से प्रकट किया था, वह इतना सुन्दर था कि उसे देखकर समस्त संसार तो विस्मित हो ही जाता था, वे स्वयं भी उसे देखकर विस्मित हो उठते थे। वह दिव्य रूप सौभाग्य व सौन्दर्य की पराकाष्ठा था और आभूषणों को भी विभूषित करने वाला था।’



**24) स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः**

**स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ।**

**बलिं हरद्विश्विरलोकपालैः**

**किरीटकोट्येडितपादपीठः ।।**

**(3-2-21)**

श्री उद्धव ने श्री विदुर के प्रति कहा—

‘श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, न तो कोई उनके समान है और न ही कोई उनसे बढ़कर है। वे संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन तीनों के स्वामी हैं, सर्वाधिक परमानन्द रूपी सम्पत्ति के द्वारा ही उन्हें समस्त दिव्य भोग प्राप्त हैं। पुरुषावतार नामक चिरलोकपाल गण (कारणोदकशायी श्री विष्णु, गर्भोदकशायी श्री विष्णु व क्षीरोदकशायी श्री विष्णु) नाना प्रकार के उपहार उनके श्री चरणों में समर्पित किया करते हैं और उनके पादपीठ को अपने कोटि किरीटों (मुकुटों) के अग्रभाग से प्रणाम किया करते हैं।’

**25) अहो बकी यं स्तनकालकूटं**





जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।  
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं  
कं वा दयालु शरणं ब्रजेम ॥



(3-2-23)

श्री उद्धव ने श्री विदुर के प्रति कहा—

‘जिस पापिनी पूतना ने ईर्ष्यावश अपने स्तनों पर कालकूट विष लगाकर श्रीकृष्ण को स्तनपान कराया था; जिन्होंने उसे भी श्री गोलोक धाम में श्रीमती यशोदा जी की दासी का दिव्य पद प्रदान कर दिया, उन भगवान् श्रीकृष्ण से बढ़कर दयालु अन्य कोई भी नहीं है, जिनकी शरण ग्रहण की जा सकें।’

26) तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द—

किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ।

अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां

सङ्क्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ॥

(3-15-43)

श्री ब्रह्मा ने देवगणों के प्रति कहा—

‘यद्यपि वे श्री सनकादि मुनिजन निर्विशेष ब्रह्म के प्रति अनुरक्त थे, किन्तु जैसे ही कमलनयन भगवान् के चरणकमलों के मकरन्द से मिश्रित तुलसीदल की सुगन्ध से युक्त वायु उनके नासिकारन्ध्रों में प्रविष्ट हुई तो उस सुगन्धित वायु ने उनके मन व शरीर में क्षोभ उत्पन्न कर दिया अर्थात् वे निर्विशेष ब्रह्म की अनुरक्ति त्याग कर सविशेष ब्रह्म श्री नारायण के प्रति अनुरक्त हो गए।’





27) नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं  
किम्वन्यदर्पितभयं भुव उन्नयैस्ते ।  
येऽङ्गत्वंदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः  
कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥



(3-15-48)

श्री सनकादि मुनियों ने श्री नारायण के प्रति कहा—  
'हे कीर्तन योग्य एवं पवित्र यश वाले श्री भगवान्! जो भक्त  
आपके श्री चरणों के शरणागत व आपकी कथाओं के रस  
तत्त्व के कुशल ज्ञाता हैं, वे आपके आत्यन्तिक प्रसाद मुक्तिपद  
को भी अधिक नहीं गिनते; फिर जिन्हें आपकी बंक भृकुटी  
भयभीत कर देती है, उन इन्द्रादि देवगणों के स्वर्गिक भोगों  
के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं।'

28) सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो  
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।  
तज्जोषणादाश्चपवर्गवर्त्मनि  
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥

(3-25-25)

भगवान् कपिल ने माता देवहूति के प्रति कहा—  
शुद्ध भक्तों की संगति में मेरे पराक्रम का यथार्थ बोध कराने  
वाली और हृदय व कानों को प्रिय लगने वाली कथाएँ होती  
हैं। उन कथाओं के सेवन से शीघ्र ही मोक्षमार्ग स्वरूप मुझमें  
श्रद्धा, रति और भक्ति का क्रमिक विकास होगा।





29) सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।  
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥



(3-29-13)

भगवान् कपिल ने माता देवहूति के प्रति कहा—  
'शुद्धभक्तजन मेरी सेवा के अतिरिक्त सालोक्य, सार्ष्टि,  
सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक को भी मेरे प्रदान  
किये जाने पर ग्रहण नहीं करते ।'

30) यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्  
यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।  
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते  
कृतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥

(3-33-6)

माता देवहूति ने भगवान् कपिल के प्रति कहा—  
'हे भगवन्! आपके पवित्र नामों का श्रवण व कीर्तन करने से  
तथा कभी—कभी आपको प्रणाम करने से व आपका स्मरण  
करने से ही कुत्ते का माँस खाने वाला चाण्डाल मनुष्य तक भी  
शीघ्र ही सोमयाजी ब्राह्मण के समान पूज्य बन जाता है; तो  
फिर उनके विषय में क्या कहा जाये, जो आपका दर्शन करते  
हैं ।'

31) अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्  
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।  
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या





ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥



(3-33-7)

माता देवहूति ने भगवान् कपिल के प्रति कहा—

‘कितने आश्चर्य की बात है कि वह चाण्डाल भी सर्वश्रेष्ठ है, जिसकी जिह्वा के अग्रभाग में आपका पवित्र नाम विराजित है। जो श्रेष्ठजन आपके पवित्र नाम का जप करते हैं, उनका तप, अग्नियज्ञ, तीर्थस्नान, सदाचार पालन व वेदाध्ययन बिना किये ही स्वतः सम्पन्न हो जाता है।’

32) या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म

ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।

सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्

किं त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥

(4-9-10)

श्री ध्रुवकृत स्तुति—

‘हे नाथ! आपके चरणकमलों का ध्यान करने से अथवा आपके अन्तरंग भक्तों के साथ आपकी लीला कथा सुनने से भक्तजनों को जो आनन्द प्राप्त होता है, वह आनन्द असाधारण माहात्म्य वाले निराकार ब्रह्म के साक्षात्कार से भी नहीं मिल सकता। फिर काल की तलवार से विनष्ट होकर स्वर्गीय विमानों से गिरने वाले देवताओं के तुच्छ सुख का तो क्या कहना?’

33) भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो

भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।





येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं  
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ।।



(4-9-11)

श्री ध्रुव कृत स्तुति—

‘हे अनन्त! आप मुझे उन विशुद्ध हृदय वाले भक्तों का  
सान्निध्य प्रदान कीजिये, जो निरन्तर आपकी शुद्ध भक्ति में  
संलग्न हैं। उनके सान्निध्य में मैं आपके गुणों व कथामृत का  
पान करके उन्मत्त हो जाऊँगा और बड़े-बड़े संकटों से  
परिपूर्ण इस भयंकर भवसागर को सरलतापूर्वक पार कर  
जाऊँगा।’

34) स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्  
विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम् ।  
अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं  
पदं यथाहं विबुधाः कलात्यये ।।

(4-24-29)

श्री रुद्र ने प्रचेताओं के प्रति कहा—

‘अपने वर्णाश्रम धर्म का समुचित ढंग से सौ जन्मों तक पालन  
करने वाला व्यक्ति ब्रह्मा का पद प्राप्त करता है और इससे भी  
अधिक योग्य बनने पर वह मेरे रुद्रपद को भी प्राप्त कर  
सकता है, किन्तु वैष्णव जन तो मृत्यु के उपरान्त सीधे ही उस  
प्रपञ्चातीत वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करते हैं, जिसे मैं तथा  
ब्रह्मादि आधिकारिक देवतागण अपने-अपने अधिकार की  
समाप्ति व लिंग शरीर के नाश होने पर ही प्राप्त करेंगे।’





35) यथा तरोर्मूलनिषेचनेन  
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।  
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां  
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥

(4-31-14)

श्री नारद ने प्रचेताओं के प्रति कहा—

‘जिस प्रकार वृक्ष की जड़ सींचने से उसका तना, शाखा, उपशाखा आदि सभी भाग तृप्त हो जाते हैं और जिस तरह भोजन द्वारा उदर को तृप्त करने से समस्त इन्द्रियाँ प्राणवान या पुष्ट होती हैं; उसी प्रकार श्री भगवान् की पूजा करने से उनके अंग स्वरूप समस्त देवताओं की पूजा स्वतः ही सम्पादित हो जाती है ।

36) गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्  
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।  
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या—  
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥

(5-5-18)

श्री ऋषभदेव ने अपने पुत्रों के प्रति कहा—

‘वह गुरु गुरु नहीं, स्वजन स्वजन नहीं, पिता पिता नहीं, माता माता नहीं, इष्टदेव इष्टदेव नहीं और पति पति नहीं, यदि वह अपने आश्रित को भगवद्भक्ति का उपदेश देकर बारम्बार जन्म—मृत्यु के चक्र से छुड़ाने में असमर्थ है ।’







37) राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां  
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः ।  
अस्त्वेवमङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दो  
मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥



(5-6-18)

श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—  
हे राजन्! भगवान् मुकुन्द आप सभी पाण्डवों और यदुवंशियों  
के रक्षक, गुरु, इष्टदेव, प्रिय और कुलपति थे; यहाँ तक कि वे  
कभी—कभी आज्ञाकारी दूत या सेवक भी बन जाते थे (आप  
पाण्डवों व यादवों की प्रेमाभक्ति के कारण भगवान् ने आप  
सभी के प्रति ऐसा आचरण किया था, दूसरों के लिये इस  
स्थिति को प्राप्त करना अति दुर्लभ है) इस प्रकार भगवान्  
श्रीकृष्ण स्वभजनशील व्यक्तियों को मुक्ति तो सरलता से  
प्रदान कर देते हैं, किन्तु प्रेमाभक्ति सहज में प्रदान नहीं करते ।

38) यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना  
सर्वैगुणैस्तत्र समासते सुराः ।  
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा  
मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥

(5-18-12)

श्री भद्रश्रवा कृत श्री नृसिंह स्तुति—  
'भगवान् में जिसकी निष्काम भक्ति है, ज्ञान—वैराग्य व धर्मादि  
समस्त सद्गुणों सहित शिव—ब्रह्मादि सभी देवगण भी उसमें  
सम्यक् रूप से नित्य निवास करते हैं । किन्तु जो भगवान् का





भक्त नहीं है, उसमें ये महान गुण कहाँ से आयेंगे? अभक्त व्यक्ति तो श्रीभगवान् से बहिर्मुख होकर असत् पदार्थों के पीछे—पीछे ही दौड़ता रहता है।’



**39) न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा  
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।  
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः  
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥**

**(5—19—24)**

देवगण कृत भारतवर्ष स्तुति—

‘जहाँ श्री भगवान् की अमृतमयी कथा की धारा नहीं बहती, जहाँ भगवान् के शरणागत भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते, जहाँ यज्ञेश्वर भगवान् की प्रसन्नता के लिये संकीर्तन यज्ञादि महोत्सव नहीं मनाये जाते, वह स्थान भले ही ब्रह्मलोक हो, निश्चय ही उसका सेवन नहीं करना चाहिये।’

**40) केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।  
अघं धुन्वन्ति कात्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥**

**(6—1—15)**

श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—

‘वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण के शरणागत भक्त विरले होते हैं, वे शुद्ध भक्ति के द्वारा अपने समस्त पापों को उसी प्रकार समूल नष्ट कर देते हैं; जिस प्रकार सूर्य अपनी प्रखर किरणों से





कुहरे को नष्ट कर देता है ।’



**41) अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।  
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ।।**

**(6-2-18)**

श्री विष्णुपार्षदों ने यमदूतों के प्रति कहा—

‘जिस प्रकार अग्नि जाने-अनजाने में भी सूखे ईंधन को जलाकर राख कर देती है, उसी प्रकार अज्ञानवश या जानबूझकर उत्तमश्लोक भगवान् के पवित्र नामों का संकीर्तन करने से मनुष्य के समस्त पाप भस्म हो जाते हैं ।’

**42) एतावनेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।  
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ।।**

**(6-3-22)**

श्री यमराज ने यमदूतों के प्रति कहा—

‘इस संसार में सभी मनुष्यों के लिये परमधर्म इतना ही माना गया है कि भगवान् के पवित्र नामों के संकीर्तनादि के द्वारा भगवान् में ही भक्ति प्रतिष्ठित हो ।’

**43) जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं**

**चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।**

**कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि**

**तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ।।**

**(6-3-29)**





श्री यमराज ने यमदूतों के प्रति कहा—

‘जिनकी जिह्वा भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों और नामों का कीर्तन नहीं करती, जिनका मन उनके चरणारविन्दों का स्मरण नहीं करता और जिनका सिर एक बार भी भगवान् कृष्ण के चरणों में प्रणाम नहीं करता, उन भगवद्भक्तिविहीन पापियों को ही मेरे समक्ष लाया करो।’



**44) अहं हरे तव पादैकमूल  
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।  
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते  
गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः॥**

**(6-11-24)**

वृत्रासुर कृत श्री हरि स्तुति—

‘हे श्री हरि! आप मुझ पर ऐसी अनुकम्पा कीजिये कि मैं अगले जन्म में भी एकमात्र आपके ही चरणकमलों का दासानुदास बनूँ। हे प्राणनाथ! मेरा मन आपके दिव्य गुणों का स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हीं दिव्य गुणों का कीर्तन करे और मेरा तन आपकी सेवा करता रहे।’

**45) ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्यहाघवान्।  
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्धयेरन् यस्य कीर्तनात्॥**

**(6-13-8)**

ऋषियों ने देवराज इन्द्र के प्रति कहा—

‘भगवान् के पवित्र नामों के कीर्तन से ब्राह्मण, पिता,





गायमाता, जन्मदात्री माता, आचार्य आदि की हत्या करने वाले महापापी और कुत्ते का माँस खाने वाले चाण्डाल व पुल्कस (पशुहिंसक) भी अपने-अपने पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाते हैं।'



**46) मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।**

**सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ।।**

**(6-14-5)**

श्री परीक्षित ने श्री शुकदेव के प्रति कहा—

‘हे महामुनि! कोटि-कोटि मुक्त व सिद्ध पुरुषों में भी निष्काम व शान्तचित्त श्री नारायण परायण वैष्णव सुदुर्लभ है।’

**47) नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।**

**स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ।।**

**(6-17-28)**

श्री रुद्र ने श्रीमती रुद्राणी के प्रति कहा—

‘भगवान् श्री नारायण के सभी शरणागत भक्त कहीं भी भयभीत नहीं होते और वे स्वर्ग, मोक्ष व नरक में भी समान रूप से हेय (तुच्छ) दृष्टि रखने वाले होते हैं।’

**48) श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।**

**अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।**

**(7-5-23)**



श्री प्रह्लाद ने असुरराज हिरण्यकशिपु के प्रति कहा—





‘भगवान् श्रीविष्णु की भक्ति की नौ विधियाँ हैं — श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।’



**49) एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।  
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र तदीक्षणम्॥**

**(7-7-55)**

श्री प्रह्लाद ने दैत्यबालकों के प्रति कहा—

‘इस संसार में मनुष्य का सर्वोच्च स्वार्थ या चरम लक्ष्य इतना ही है कि वह भगवान् श्रीगोविन्द की अनन्य भक्ति प्राप्त करे। उस अनन्य भक्ति के द्वारा सर्वत्र गोविन्द का दर्शन प्राप्त होता है।’

**50) यूयं नृलाके बत भूरिभागा  
लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति।  
येषां गृहानावसतीति साक्षाद्  
गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्॥**

**(7-10-48)**

देवर्षि श्री नारद ने श्री युधिष्ठिर के प्रति कहा—

‘इस मनुष्यलोक में तुम सभी पाण्डव अत्यन्त भाग्यशाली हो, क्योंकि तुम्हारे घर में साक्षात् नराकृति परंब्रह्म गुप्त रूप से निवास करते हैं। यही कारण है कि संसार को पवित्र करने वाले मुनिजन उनका दर्शन करने के लिये बारम्बार तुम्हारे पास आते हैं।’





51) मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।  
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसङ्कीर्तनं तव ॥

(8-23-16)

श्री शुक्राचार्य ने भगवान् श्री वामन के प्रति कहा—  
'आपका नामसंकीर्तन मन्त्र, कर्मानुष्ठान, स्थान, समय, पात्र  
व अर्पण योग्य वस्तु से सम्बंधित समस्त त्रुटियों को  
त्रुटिविहीन कर देता है।'

52) अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।  
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

(9-4-63)

श्री नारायण ने श्री दुर्वासा के प्रति कहा—  
'हे द्विज! मैं पूर्णतः भक्तों के अधीन हूँ, निस्सन्देह मैं परतन्त्र के  
समान हूँ। मेरे शुद्ध भक्तों ने मेरे हृदय को अपने नियन्त्रण में  
कर रखा है और जिस तरह भक्त मुझे प्रिय हैं, उसी तरह मैं  
भक्तजनों का प्रिय हूँ।'

53) मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ।  
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविप्लुतम् ॥

(9-4-67)

श्री नारायण ने श्री दुर्वासा के प्रति कहा—  
'मेरी सेवा सुख से पूर्ण सन्तुष्ट भक्त, मेरी सेवा से स्वतः प्राप्त  
होने वाली चार प्रकार की मुक्तियों— सालोक्य, सारूप्य,  
सार्ष्टि व सामीप्य की भी इच्छा नहीं करते, फिर काल के





प्रभाव से नष्ट हो जाने वाले विषयभोगों की इच्छा करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।’



**54) वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः ।  
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥**

**(10-1-23)**

श्री ब्रह्मा ने देवताओं के प्रति कहा—

‘श्री वसुदेव जी के घर में साक्षात् परमपुरुष भगवान् प्रकट होंगे। अतः उनकी और उनकी प्रियतमा श्री राधा की सेवा के लिये देवांगनाओं को भी जन्म लेना होगा।’

**55) सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं  
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।  
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं  
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥**

**(10-2-26)**

देवताओं द्वारा गर्भस्थ श्रीकृष्ण की स्तुति—

‘हे प्रभु! आप सत्यसंकल्प हैं, सत्यपरायण हैं और आपकी सृष्टि, पालन व संहार— ये तीनों लीलाएँ सत्य हैं। इस सत्य विश्व के कारण आप ही हैं। इस सत्य विश्व में अन्तर्यामी परमात्मा रूप से आप ही स्थित हैं। समस्त सत्यों की सत्यता के एकमात्र कारण आप ही हैं। आप ही सत्यवचनों और समदृष्टि के प्रवर्तक हैं। आप सत्यस्वरूप हैं; हम सभी आपकी शरण में आये हैं।’







56) येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन—  
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।  
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः  
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥



(10-2-32)

‘देवताओं द्वारा गर्भस्थ श्रीकृष्ण की स्तुति—  
‘हे कमलनयन! जो लोग आपके चरणकमलों का अनादर करके स्वयं को मुक्त पुरुष मानते हैं, उनकी बुद्धि विशुद्ध नहीं मानी जा सकती; क्योंकि उनकी बुद्धि में आपके प्रति भक्तिभाव नहीं रहता। ऐसे अविशुद्ध बुद्धि वाले लोग अनेक जन्मों की कठिन तपस्या के बल से जीवन मुक्त अवस्था तक पहुँचकर भी नीचे गिर जाते हैं।’

57) त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ।  
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥

(10-8-45)

श्री शुकदेव ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—  
‘सारे वेद, उपनिषद्, सांख्य दर्शन, योगदर्शन एवं पञ्चरात्र शास्त्र जिन भगवान् श्री हरि की महिमा का वर्णन करते रहते हैं, उन्हें यशोदा जी अपना पुत्र मानती थी।’

58) न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ।  
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥

(10-9-13)





59) तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।

गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥

(10-9-14)

श्री शुकदेव ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—

‘जिनका न तो अन्तः है और न ही बाह्य, जिनका न तो पूर्व है और न ही पश्चात् जो जगत का पूर्व भी है और पश्चात् भी, अन्तः भी है और बाह्य भी और जो स्वयं ही जगत्स्वरूप हैं; उन अव्यक्त व अधोक्षज नराकृति भगवान् को अपना पुत्र मानकर यशोदा गोपी ने प्राकृत बालक की भाँति ऊखल के साथ रस्सी से बाँध दिया ।’

60) यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो  
धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः ।

स एव यद्वृग्विषयः स्वयं स्थितः  
किं वर्ण्यते दिष्टमतो ब्रजौकसाम् ॥

(10-12-12)

श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—

‘जिन स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की चरणरज उन योगियों के लिये भी अप्राप्य है, जो अनेक जन्मों तक बहुत कष्ट उठाकर अपने मन व इन्द्रियों को वश में कर लेते हैं; वही भगवान् जिन्हें नित्य दृष्टिगोचर होते हैं, ऐसे ब्रजवासियों के सौभाग्य की महिमा भला कौन वर्णन कर सकता है ?’

61) सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः ।





अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषदृशाम् ।।

(10-13-54)



श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—

‘वे समस्त विष्णु मूर्तियाँ सत्य, ज्ञान, अनन्त आनन्दमात्र और एक रस स्वरूप थी। उपनिषद दर्शी तत्त्वज्ञानी भी उनकी अनन्त महिमा का स्पर्श तक नहीं कर सकते थे।’

62) अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य  
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ।  
नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण  
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ।।

(10-14-2)

श्री ब्रह्मा कृत श्रीकृष्ण स्तुति —

‘हे प्रभु! आपका यह श्रीविग्रह पाँचभौतिक तत्त्वों से निर्मित नहीं है, अपितु चिन्मय है। आप और आपके श्रीविग्रह में कोई भेद न होने से आपका श्रीविग्रह स्वेच्छामय है। मुझ पर दर्प-हानि रूपी अनुग्रह करने के लिये ही स्वेच्छा से यह मेरे समक्ष प्रकट हुआ है। जब मैं ब्रह्मा होकर भी आपके श्रीविग्रह की महिमा जानने में समर्थ नहीं हो सका, फिर और कोई एकाग्रमन से भी आपकी महिमा कैसे जान सकता है? आप तो आत्मसुखानुभूति स्वरूप हैं, आपके स्वरूपगत परमानन्द का अनुभव साक्षात् आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर सकता।’

63) ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव  
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ।





स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि—  
ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ।।

(10-14-3)

श्री ब्रह्मा कृत श्रीकृष्ण स्तुति —

‘हे अजित! जो व्यक्ति आपके स्वरूप—ऐश्वर्य के महिमा ज्ञान की प्राप्ति के विचार को त्यागकर और तीर्थाटन को भी छोड़कर केवल शुद्ध भक्तों के समीपस्थ रहकर तन से प्रणामपूर्वक, वाणी से कीर्तनपूर्वक और मन से स्मरणपूर्वक शुद्ध भक्तों के मुख से उच्चारित तथा स्वयं ही कर्णरन्ध्रों में प्रवेश करने वाली आपके रूप—गुण—लीला की कथावार्ता को नमन करते हुए अपना जीवन यापन करते हैं, वे अपनी इस भक्ति से प्रायः आपको भी जीत लेते हैं; यद्यपि आप त्रिलोकी में अजेय हो।’

64) श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो  
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।  
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते  
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ।।

(10-14-4)

श्री ब्रह्मा कृत श्रीकृष्ण स्तुति —

‘हे विभुमूर्ति! जो लोग कल्याण के सर्वोत्तम मार्ग आपकी भक्ति की उपेक्षा करके केवल निर्गुण ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के लिये श्रवण—मनन—निदिध्यासन व यम—नियमादि कठिन परिश्रम करते हैं; उनको केवल श्रम ही श्रम हाथ लगता है और कुछ नहीं, जैसे धान के छिलके को कूटने वाले व्यक्ति को केवल





परिश्रम रूपी क्लेश मिलता है परिश्रम फल रूपी चावल नहीं ।’



**65) तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो  
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।  
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते  
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभक् ॥**

**(10-14-8)**

श्री ब्रह्मा कृत श्रीकृष्ण स्तुति —

‘हे श्रीकृष्ण! जो व्यक्ति आपकी कृपा की प्रतीक्षा करता हुआ अपने कर्मफलों को अनासक्त होकर भोगता रहता है और मन, वचन व कर्म पूर्वक सदैव आपको नमस्कार करते हुए जीवन यापन करता है, वही भाईयों के बंटवारे की भाँति मुक्ति-पद या श्रीकृष्ण चरणकमल रूपी सम्पत्ति का अधिकारी होता है ।’

**66) अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय—  
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।  
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो  
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥**

**(10-14-29)**

श्री ब्रह्मा कृत श्रीकृष्ण स्तुति —

‘हे परमेश्वर! जो व्यक्ति आपके युगल चरणकमलों का तनिक सा भी कृपा प्रसाद प्राप्त करके अनुगृहीत हो जाता है, वही आपकी सच्चिदानन्दमयी महिमा का तत्त्व जान सकता है । दूसरा कोई भी निर्गुण ब्रह्म ज्ञान के चिन्तन द्वारा भले ही





दीर्घकाल तक अनुसन्धान करता रहे, वह आपकी महिमा का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता ।’



67) तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो  
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।  
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां  
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ।।

(10-14-30)

श्री ब्रह्मा कृत श्रीकृष्ण स्तुति —

‘अतः हे नाथ! मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं इस जन्म में, किसी अगले जन्म में अथवा पशुयोनि में भी आपके दासों में से कोई एक दास बनूँ और आपके चरणकमलों की सेवा करूँ ।’

68) अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।  
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ।।

(10-14-32)

श्री ब्रह्मा कृत श्रीकृष्ण स्तुति —

‘श्री नन्दादि व्रजवासी गोपों का परम सौभाग्य है कि परमानन्द स्वरूप सनातन पूर्ण ब्रह्म उनके निजजन और सुहृद है ।’

69) तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां  
यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।  
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्द—





स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥

(10-14-34)



श्री ब्रह्मा कृत श्रीकृष्ण स्तुति —

‘इस श्री ब्रजभूमि के किसी वन में और विशेष रूप से श्री गोकुल में किसी भी योनि में जन्म होना मेरे लिये बड़े सौभाग्य की बात होगी; क्योंकि यहाँ पर जन्म होने से आपके उन प्रेमी भक्तों की चरण रज से अभिषेक करने का सुअवसर प्राप्त होगा, जिनके जीवन का सर्वस्व वह भगवान् मुकुन्द हैं, श्रुतियाँ भी अनादिकाल से आज तक जिनकी चरण रज को खोज ही रही हैं।’

70) समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं

महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं

पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥

(10-14-58)

श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—

‘जिन्होंने पवित्रकीर्ति मुरारी श्रीकृष्ण के उन सुकोमल चरणयुगल रूपी नौका का आश्रय लिया है, जो सत्पुरुषों के लिये शरणस्वरूप हैं। श्रीकृष्ण के चरणकमलों के आश्रित उन भक्तजनों के लिये यह भवसागर बछड़े के खुर से बने गड्ढे में भरे जल के समान है। उन्हें उस परमपद की प्राप्ति हो जाती है, जहाँ पर इस संसार की भाँति पग-पग पर विपदाएँ नहीं हैं।’



71) कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे





तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।  
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो  
विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥



(10-16-36)

कालिय नाग की पत्नियों ने श्रीकृष्ण के प्रति कहा—  
'हे प्रभु! हम नहीं जानती कि इसे अपनी किस साधना के  
फलस्वरूप आपके चरणकमलों की उस रज का स्पर्शाधिकार  
मिल गया है, जिसे प्राप्त करने के लिये श्री लक्ष्मी जी ने  
समस्त सुख—ऐश्वर्यों का त्याग करके नियमपूर्वक दीर्घकाल  
तक तपस्या की थी।'

72) बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं  
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।  
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधयापूरयन्गोपवृन्दैर्  
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥

(10-21-5)

श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—  
'श्रीकृष्ण ग्वालसखाओं सहित वृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं।  
उनके सिर पर मोरपंख है और कर्णों में कनेर के पीले पुष्प;  
देह पर पीतांबर और कण्ठ में पाँच तरह के सुगन्धित पुष्पों से  
निर्मित वैजयन्ती माला है। इस प्रकार सुसज्जित श्रीकृष्ण  
रंगमंच पर अभिनय करने वाले श्रेष्ठ नट की तरह प्रतीत हो  
रहे हैं। श्रीकृष्ण वेणु के रन्ध्रों को अपने अधरामृत से भर रहे  
हैं। ग्वालसखा उनकी पवित्रकीर्ति का गायन करते हुए  
पीछे—पीछे चल रहे हैं। वह वृन्दावन वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ है







और श्रीकृष्ण के चरणचिह्नों से तो और भी अधिक रमणीय बन गया है।’



**73) इति सञ्चिन्त्य भगवान्महाकारुणिको हरिः ।**

**दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ।।**

**(10-28-14)**

श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—

‘इस प्रकार विचारपूर्वक परमदयालु भगवान् श्रीकृष्ण ने उन गोपों को मायान्धकार से अतीत अपना श्री गोलोक धाम दिखलाया।’

**74) तव कथामृतं तप्तजीवनं**

**कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।**

**श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं**

**भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः ।।**

**(10-31-9)**

श्री गोपियों ने श्रीकृष्ण विरह में गाया—

‘हे श्रीकृष्ण! आपकी लीलाकथा अमृतस्वरूप है। श्री कृष्ण विरह से संतप्त लोगो के लिये तो यह जीवन सर्वस्व ही हैं। बड़े-बड़े विद्वान भक्तों के द्वारा इस कथा का वर्णन किया जाता है। आपकी कथा समस्त पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्र से परममंगल भी करती है। आपकी कथा परम सुन्दर और सुविस्तृत भी है। जो लोग आपकी कथा का गान करते हैं; निश्चय ही इस पृथ्वी पर वे सबसे बड़े दाता





हैं।'



75) एवं परिष्वङ्गकराभिमर्श—  
स्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।  
रेमे रमेशो ब्रजसुन्दरीभि—  
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

(10—33—16)

श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—  
'जिस प्रकार एक शिशु अपने प्रतिबिम्ब के साथ खेलता है,  
उसी प्रकार रमानाथ भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी ही दिनी  
शक्ति की अंशभूता उन ब्रजसुन्दरियों के साथ क्रीड़ा की। वे  
भगवान् कभी उन्हें अपने हृदय से लगा लेते, कभी अपने कर  
द्वारा उन्हें स्पर्श करते, कभी प्रेमभरी तिरछी चितवन से उनको  
देखते और कभी उन्हें देखकर आनन्दमयी हँसी हँसने लगते  
थे। इस प्रकार वे निर्विकार भाव से ब्रजरमणियों के साथ  
विहार किया करते थे।'

76) नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ।  
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्स्वान्स्वान्दरान्ब्रजौकसः ॥

(10—33—37)

श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—  
'ब्रजवासी गोपगण भगवान् श्रीकृष्ण से तनिक भी ईर्ष्या नहीं  
रखते थे, क्योंकि वे उनकी योगमाया से मोहित होकर ऐसा  
समझते थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही रहती हैं।'

77) सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः





शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।  
कवय आनतकन्धरचित्ताः  
कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥

(10-35-15)

गोपियाँ परस्पर कहती हैं—

‘वेणु ध्वनि को सुनकर इन्द्र, शिव व ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े  
विद्वान् देवता भी मोहित हो जाते हैं। उनके चित्त उस  
वेणुध्वनि में तल्लीन होने से उनके सिर भी झुक जाते हैं,  
किन्तु वे उस वेणु ध्वनि का सार तत्त्व निश्चित नहीं कर  
पाते।’

78) पुण्या बत ब्रजभुवो यदयं नृलिङ्गं  
गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ।  
गाः पालयन्सहबलः क्वणयंश्च वेणुं  
विक्रीड्याञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः ॥

(10-44-13)

मथुरा की नारियाँ परस्पर कहती हैं—

‘निस्सन्देह ब्रजभूमि ही परमपवित्र और परमधन्य है क्योंकि  
वहाँ ये नराकृति पुराणपुरुष श्रीकृष्ण गुप्तरूप से वास करते  
हैं। जिनके चरणकमल श्री शिव और देवी रमा द्वारा पूजित हैं,  
वही भगवान् वहाँ रंग-बिरंगे वनफूलों से निर्मित माला धारण  
करते हैं, श्री बलराम जी के साथ गौ पालन करते हैं, वेणु  
बजाते हैं और विविध लीलाएँ करते हुए आनन्द से विचरते  
हैं।’





79) गोप्यस्तपः किमचरन्त्यदमुष्य रूपं  
लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ।  
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप—  
मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥



(10-44-14)

मथुरा की नारियाँ परस्पर कहती हैं—  
'उन ब्रजगोपियों ने ऐसी कौन सी तपस्या कर रखी है,  
जिसके प्रभाव से वे श्रीकृष्ण के उस रूप का अपने नेत्रों द्वारा  
निरन्तर पान करती रहती हैं; जो समस्त लावण्य का सार,  
असमोर्ध्व, अनन्य सिद्ध, नित्यनवीन, अत्यंत दुर्लभ और यश,  
श्री व ऐश्वर्य का एकमात्र आश्रय है।'

80) दानव्रततपोहोम जपस्वाध्यायसंयमैः ।  
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥

(10-47-24)

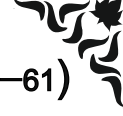
श्री उद्धव जी ने ब्रजगोपियों के प्रति कहा—  
'दान, व्रत, तप, यज्ञ, मन्त्र जप, वेदाध्ययन व संयम आदि  
नाना प्रकार के कल्याणकारी साधनों का फल श्रीकृष्ण में शुद्ध  
भक्ति होना ही है।'

81) आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां  
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।  
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा  
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥





(10-47-61)



श्री उद्धव जी द्वारा ब्रजगोपियों की महिमा का गायन—

‘मैं इस वृन्दावन में झाड़ियों, लताओं तथा वनौषधियों में से कोई एक बनना चाहता हूँ, जिससे कि मुझे इन श्रीब्रजगोपियों की चरणरज सेवन करने का सौभाग्य मिलता रहे। धन्य हैं ये ब्रजगोपियाँ जिन्होंने अत्यंत दुस्त्यज्य स्वजन-सम्बन्धियों तथा लोक-वेद रूपी आर्य मर्यादा का परित्याग करके भगवान् श्रीकृष्ण की उस प्रेमपदवी को प्राप्त किया है; जिसे श्रुतियाँ भी खोजती ही रहती हैं, किन्तु प्राप्त नहीं कर पाती।’

**82) मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्ण पादाम्बुजाश्रयाः।  
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु॥**

(10-47-66)

श्री नन्दादि गोपगणों ने कहा—

‘हे उद्धव जी! हम तो यही चाहते हैं कि अब हमारे मन की प्रत्येक वृत्ति, प्रत्येक संकल्प श्रीकृष्ण के चरणकमलों के ही आश्रित रहें। हमारी वाणी नित्य-निरन्तर उन्हीं के नामों का कीर्तन करती रहे और हमारे शरीर उन्हीं को प्रणाम करने व सेवा करने में लगे रहें।’

**83) कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया।  
मङ्गलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे॥**

(10-47-67)

श्री नन्दादि गोपगणों ने कहा—

‘हे उद्धव जी! हमें मुक्ति की तनिक भी इच्छा नहीं है। हम





भगवान् की इच्छा से अपने कर्मों के अनुसार चाहे जिस योनि में जन्म लें— वहाँ हमें अपने शुभ आचरण और गौदानादि का यही फल प्राप्त हो कि हमारे अपने भगवान् श्रीकृष्ण में हमारी प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे ।’



84) श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते  
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ।  
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं  
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥

(10-52-37)

श्री रुक्मिणी सन्देश—

‘हे त्रिभुवनसुन्दर! आपके दिव्य गुणों, जो सुनने वाले के कर्णरन्ध्रों के द्वारा हृदय में प्रविष्ट होकर अंग-अंग का ताप मिटा देते हैं तथा आपके रूप सौन्दर्य, जो नेत्रधारियों के नेत्रों के लिये धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का फल है, के विषय में सुनकर, हे अच्युत! मेरा मन लज्जा को त्यागकर आपमें ही प्रविष्ट हो गया है ।’

85) त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्त—  
मांसास्थिरक्तकृमिविद्वक्फपित्तवातम् ।  
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा  
या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥

(10-60-45)





श्री रुक्मिणी जी ने श्रीकृष्ण के प्रति कहा—

‘मनुष्य का शरीर जीवित रहने पर भी शवतुल्य ही है। यह ऊपर से चमड़ी, मूँछ—दाढ़ी, रोएँ, नाखून और केशों से ढका हुआ है; किन्तु इसके अन्दर माँस, हड्डी, रक्त, कीड़े, मल—मूत्र, कफ, पित्त और वायु भरे पड़े हैं। इसे वही मोहग्रस्त स्त्री अपना प्रियतम पति मानकर सेवन करती है, जिसे कभी आपके चरणकमलों के मकरन्द की सुगन्ध सूँघने को नहीं मिली है।’



**86) त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।  
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ।।**

**(10—63—34)**

श्री शिव कृत कृष्ण स्तुति—

‘हे श्रीकृष्ण! आप वेदमन्त्रों में तात्पर्यरूप से छिपे हुए सर्व—प्रकाशक एवं स्व—प्रकाश परंब्रह्म हो। केवल निर्मल हृदय वाले महात्माओं को ही आपके आकाश के समान निर्लिप्त स्वरूप का दर्शन हुआ करता है।’

**87) अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ।**

**सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ।।**

**(10—63—43)**

श्री शिव कृत श्रीकृष्ण स्तुति—

‘हे श्रीकृष्ण! मैं, ब्रह्मा, समस्त देवगण और विशुद्ध हृदय वाले मुनिजन सर्वात्म भाव से और सब प्रकार से आपके ही





शरणागत हैं; क्योंकि आप ही हमारे परमात्मा, प्रियतम और परमेश्वर हो।’



**88) राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ।  
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥**

**(10-65-28)**

श्री यमुना ने भगवान् श्री बलराम के प्रति कहा—

‘हे लोकाभिराम महाबाहु बलराम! मैं आपका पराक्रम भूल गयी थी। हे जगत् पति! अब मैं जान गयी हूँ कि आपके एक अंश मात्र श्री अनन्त शेष जी इस सम्पूर्ण जगत को धारण करते हैं।’

**89) यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालै—**

**मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ।**

**ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः**

**श्री श्रोद्धहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥**

**(10-68-37)**

भगवान् बलराम कौरवों के दुर्वचनों का स्मरण करते हुए कहते हैं—

‘जिनके चरणकमलों की रज साधु पुरुषों द्वारा सेवित गंगा आदि तीर्थों को भी तीर्थ बनाने वाली है, समस्त लोकपाल अपने-अपने उत्तम मुकुट पर जिनके चरणकमलों की रज धारण करते हैं; श्री ब्रह्मा, श्री शिव, मैं और श्री लक्ष्मी जी जिनकी कला की भी कला है, और जिनके चरणकमलों की रज सदैव धारण करते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्ण में भी क्या







राजसिंहासन पर बैठने की योग्यता नहीं है !'



90) चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ।  
गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥

(10-69-2)

‘श्री नारद जी सोचने लगे—

यह कितने आश्चर्य का विषय है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने एक ही शरीर से एक ही समय सोलह हजार राजभवनों में पृथक्—पृथक् सोलह हजार राजकुमारियों से विवाह कर लिया ।’

91) स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।  
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥

(10-81-19)

श्री सुदामा जी सोचने लगे—

‘स्वर्ग, मुक्ति, रसातल व पृथ्वी की सम्पत्ति और समस्त प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति का मूल भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों की पूजा ही है ।’

92) आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं

योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।

संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं

गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः ॥

(10-82-48)





‘हे कमलनाभ! अगाध ज्ञान से युक्त महान योगेश्वरगण अपने हृदय में आपके चरणारविन्दों का स्मरण करते रहते हैं। संसार रूपी कूप में पतित हुए लोगों को बाहर निकालने के लिये आपके चरणकमल ही एकमात्र अवलम्बन हैं। आप हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि गृहस्थ कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी हमारे हृदय में आपके चरणकमल सदैव विराजमान रहें।’



**93) यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ।**

**भवन्ति किल विश्वात्मस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ॥**

**(10-85-31)**

श्री देवकी जी ने भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति कहा—

‘हे विश्वात्मा! आपके स्वांश कारणोदकशायी श्री विष्णु की अंशरूपा माया से त्रिगुण रूप अंशों की उत्पत्ति हुई है, इन्हीं त्रिगुणों के लेशमात्र से ही विश्व की उत्पत्ति, विकास व प्रलय होता है। आज मैं तुम्हारी शरण में आयी हूँ।’

**94) हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ।**

**स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥**

**(10-88-5)**

श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—

‘भगवान् श्री हरि प्रकृति से परे, साक्षात् परमात्मा और प्राकृत गुणों से रहित हैं। वे सर्वज्ञ और सर्वसाक्षी हैं। जो कोई उनकी भक्ति करता है; वह भी उन्हीं की तरह त्रिगुणातीत हो जाता है।’





95) भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति  
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः ।  
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु  
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥

(11-2-42)

श्री कवि मुनि ने श्री निमि के प्रति कहा—

‘जिस प्रकार भोजन करने वाले व्यक्ति को भोजन के प्रत्येक ग्रास के साथ तुष्टि, पुष्टि और क्षुधा निवृत्ति एक साथ ही मिलती है; उसी प्रकार श्री भगवान् के शरणागत भक्त को साधन भजन करते समय प्रतिक्षण भगवत्प्रेम, भगवद्स्वरूप की अनुभूति और भगवान् के अतिरिक्त अन्य पदार्थों से वैराग्य इन तीनों की एक साथ ही प्राप्ति हो जाती है ।’

96) तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।  
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥

(11-3-21)

श्री प्रबुद्ध मुनि ने श्री निमि के प्रति कहा—

‘सर्वोत्तम साधन—साध्य के जिज्ञासु व्यक्ति को ऐसे गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए, जो वेदों के तात्पर्य विचार में सुनिपुण, परब्रह्म में परिनिष्ठित तत्त्वज्ञानी और सर्वापेक्षा रहित हो ।’

97) कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।  
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

(11-5-32)





श्री करभाजन मुनि ने श्री निमि के प्रति कहा—

‘कलियुग में बुद्धिमान लोग संकीर्तन यज्ञ के द्वारा गौरकान्तियुक्त, कृष्ण का वर्णन करने वाले और अंग—उपांग ही जिनके अस्त्र व पार्षद हैं; ऐसे भगवान् श्री गौरसुन्दर की पूजा किया करते हैं।’



**98) कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।  
यत्र सङ्कीर्तनेनैव सर्वस्वार्थोऽभिलभ्यते ॥**

**(11-5-36)**

श्री करभाजन मुनि ने श्री निमि के प्रति कहा—

‘कलियुग में संकीर्तन से ही स्वार्थ व परमार्थ रूपी समस्त साध्यों की प्राप्ति हाती है, इसलिये गुणज्ञ एवं सारग्राही आर्यगण कलियुग की प्रशंसा किया करते हैं।’

**99) देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां  
न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।  
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं  
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥**

**(11-5-41)**

श्री करभाजन मुनि ने श्री निमि के प्रति कहा—

‘हे राजन्! जो व्यक्ति करणीय कर्मों का परित्याग करके सर्वात्म भाव से शरण लेने योग्य भगवान् श्री मुकुन्द की शरण ग्रहण कर लेता है, वह फिर देवताओं, ऋषियों, सामान्य प्राणियों, कुटुम्बियों, अन्य मनुष्यों व पितृगणों का न तो दास





रहता और न ही ऋणी रहता है।’



100) लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते  
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।  
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव—  
त्रिःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥

(11-9-29)

अवधूत श्री दत्तात्रेय ने श्री यदु महाराज के प्रति कहा—  
‘यद्यपि यह मनुष्य शरीर है तो नश्वर ही, किन्तु इसके द्वारा परम पुरुषार्थ की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये अनेकानेक जन्मों के पश्चात् यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर बुद्धिमान व्यक्ति को शीघ्रातिशीघ्र मृत्यु से पूर्व ही परमकल्याण स्वरूप भगवत्प्राप्ति का प्रयत्न कर लेना चाहिये। यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। विषय भोग तो सभी योनियों में सुलभ है, किन्तु भगवत्प्राप्ति केवल मनुष्य जीवन में ही सम्भव है; अतः विषयभोगों के पीछे अमूल्य मनुष्य जीवन नष्ट नहीं करना चाहिये।’

101) न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्यं  
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।  
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा  
मय्यर्पितात्मेच्छति मदं विनान्यत् ॥

(11-14-14)

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्री उद्धव के प्रति कहा—  
‘जिसने स्वयं को मुझे समर्पित कर दिया है, वह भक्त मेरे अतिरिक्त न तो ब्रह्मा का पद चाहता है और न ही देवराज





इन्द्र का, उसके मन में न तो पृथ्वी का सम्राट बनने की इच्छा होती है और न ही वह रसातल का स्वामी बनना चाहता है। वह तो अणिमादि योगसिद्धियों अथवा मोक्ष तक की भी अभिलाषा नहीं रखता है।’



**102) न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।  
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥**

**(11-14-20)**

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्री उद्धव के प्रति कहा—

‘हे उद्धव! जिस तरह मेरी शुद्ध भक्ति मुझे वशीभूत करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है, उस तरह अन्य कोई योग, सांख्य, स्वधर्म पालन, वेद—स्वाध्याय, तप और त्याग मुझे वशीभूत करने का साधन नहीं है।’

**103) भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियःसताम् ।  
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥**

**(11-14-21)**

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्री उद्धव के प्रति कहा—

‘मैं शुद्ध भक्तों का प्रियतम आत्मा अनन्य श्रद्धा और अनन्य भक्ति द्वारा ही प्राप्त होता हूँ। मुझमें अनन्य निष्ठा रूपा भक्ति चांडाल कुल में उत्पन्न व्यक्ति को भी पवित्र करके उसे जातिदोष से मुक्त कर देती है।’

**104) नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं**





प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।  
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं  
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥



(11-20-17)

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्री उद्धव के प्रति कहा—

‘यह मनुष्य शरीर समस्त शुभ फलों की प्राप्ति का मूल है और अत्यंत दुर्लभ होने पर भी यह अनायास ही सुलभ हो गया है। इस भवसागर से पार होने के लिये यह एक सुदृढ़ नाव के समान है, श्री गुरुदेव केवट के समान है और मेरी भक्तिमयी सेवा ही उन अनुकूल हवाओं के समान है, जो इसे लक्ष्य की ओर बढ़ाती है। इतनी सुविधा होने पर भी जो मनुष्य शरीर रूपी नाव के द्वारा भवसागर से पार नहीं हो पाता, वह अपनी आत्मा का अधःपतन करने वाला स्वयं ही है। अन्य कोई उसके अधःपतन के लिये उत्तरदायी नहीं।’

105) मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं  
त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् ।  
जिग्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशः  
किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥

(11-31-12)

श्री शुकदेव जी ने श्री परीक्षित जी के प्रति कहा—

‘सान्दीपनी गुरु के बहुत समय पूर्व मृत पुत्र को जो यमलोक से उसी मनुष्य शरीर सहित वापस ले आये। उन शरणागत वत्सल ने अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से दग्ध तुम्हें फिर से जीवित कर दिया। जिन्होंने कालों के महाकाल श्री शंकर जी को भी





युद्ध में जीत लिया था और उनके अपने ही शरीर पर प्रहार करने वाले अपराधी जरा नामक व्याध को भी सशरीर वैकुण्ठ धाम भेज दिया। हे परीक्षित! क्या वे अपने यदुवंशियों की रक्षा करने में समर्थ नहीं थे?’



**106) कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।  
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥  
(12-3-51)**

श्री शुकदेव ने श्री परीक्षित के प्रति कहा—  
‘हे राजन्! यद्यपि यह कलियुग दोषों का कोषागार है; तथापि इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह गुण यही है कि केवल श्रीकृष्ण का संकीर्तन करने से ही समस्त आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमधाम की प्राप्ति हो जाती है।’

**107) निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा।  
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा॥  
(12-13-16)**

श्री सूत ने श्री शौनकादि मुनियों के प्रति कहा—  
‘जिस प्रकार नदियों में श्री गंगा, देवों में श्री विष्णु और वैष्णवों में श्री शिव सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पुराणों में यह श्रीमद्भागवत सर्वश्रेष्ठ है।’







108) नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।  
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥



(12-13-23)

श्री सूत ने श्री शौनकादि मुनियों के प्रति कहा—

‘जिन भगवान् के नामों का संकीर्तन समस्त पापों को पूर्णतः नष्ट कर देता है और जिनके चरणकमलों में आत्मसमर्पणपूर्वक किया गया प्रणाम समस्त प्रकार के दुःखों को सदा के लिये शान्त कर देता है, उन परमहरि श्रीकृष्ण को मैं सादर नमन करता हूँ।’

